''समकालीनता के विविध सन्दर्भ और सर्वेश्वर की कविता''

*डॉ. प्रतिभा शुक्ला

शोध सारांश

सजग और सर्जक कवि अपने युग से प्रभावित होता है, और युग को भी प्रभावित करता है। युग के भीतर से ही वह कुछ ऐसा विशिष्ट भी पैदा करता है, जो उसकी अपनी पहचान होता है। यह पहचान युग की सम–सामयिक घटनाओं और परिस्थितियों से बनती है। सम–सामयिकता को साथ लेकर चलने वाले साहित्यकारों की दृष्टि प्रायः दो प्रकार की होती हैं

(1) पहली दृष्टि में कविता का सम–सामयिक घटनाओं से सम्बन्ध समकालीन सन्दर्भ में ही रहता है।

(2) दूसरी दृष्टि में कवि सामयिक दृष्टि का मोह छोड़कर स्थायी और युग–व्यापी जीवन की घटनाओं को कविता में स्थान देकर समाज का ध्यान आकृष्ट करता है।

इस सन्दर्भ में नेमीचंद जैन का कथन सत्य है –''श्रेष्ठ साहित्य वही होता है जो साहित्यकार की सच्ची अनुभूति की उपज हो, जिस सत्य को लेखक ने स्वयं पूरी–पूरी तीव्रता के साथ साक्षात्कार नहीं किया है, उसे लेकर वह मार्मिक और सार्थक साहित्य नहीं लिख सकता। दूसरे शब्दों में कोई भी लेखक सामयिक स्थितियों से अलग होकर नहीं लिख सकता है।''यूँ तो सर्वेश्वर ''तीसरा सप्तक'' के अन्तिम कवि है, किन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका स्थान नये काव्य की पहली पीढ़ी और समकालीन कविता के बीच स्थित है। सर्वेश्वर ने अपने सम–सामयिक परिवेश को कई रूपों और दृष्टियों से देखा है। जहाँ अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री के लिए परिवेश का अर्थ, कुछ और होता है वहीं कवि के लिए कुछ और। जब परिवेश बदलता है तो उसके साथ मूल्य भी बदलते हैं, मूल्यों के बदलाव से समस्त रचना–प्रक्रिया भी बदल जाती है। इस सन्दर्भ में अज्ञेय जी ने लिखा है –''परिवेश जो मेरे आस–पास है, वह केवल काल नहीं है, उसका होना जितना जरूरी है – उसका आस–पास होना भी उतना ही जरूरी है। परिवेश केवल देश भी नहीं है उसका आस–पास होने का बोध भी जरूरी है।''

अज्ञेय जी के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि सफल रचनाकार का अपने काल और परिवेश से प्रतिबद्ध होना आवश्यक होता है। जो रचनाकार अपने परिवेश और तत्सम्बन्धी काल से जितना अधिक प्रतिबद्ध होगा उसकी रचनाओं में समकालीन परिवेश उतना ही अधिक संश्लिष्ट होगा। यही कारण है कि नयी कविता में सर्वेश्वर ने सम–सामयिक चेतना के स्तर पर अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व बनाया है, उनकी चेतना का स्तर एकपक्षीय या एकरसता पूर्ण नहीं है। सम–सामयिक जीवन के अनेकानेक संघर्षो ने उनकी चेतना को बहु–आयामी और बहुस्तरीय बनाया है। सर्वेश्वर की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी चेतना का संसार आस–पास के आप और हम से संश्लिष्ट (मिला–जुला) होने के कारण यथार्थ, अनुभूत और वैविध्यपूर्ण है। कवि की

वैचारिक बैचैनी सम्पूर्ण युगबोध के साथ कविता में उभरी है। ''उनका कवि–कर्म युग–जीवन से संपृक्त तो है ही, जनता के गूंगेपन की आवाज भी है। उनकी गहरी और सघन संवेदना स्थिति और परिवेश से जुड़कर एक समर्थ सच्ची आवाज बन जाती है जो जुल्म के ठिकाने पर आजादी के निशान खोजती है, इन सबमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि रघुवीर सहाय की भाँति उनका व्यंग्य राजनीतिक नहीं होता अथवा न ही भवानीप्रसाद मिश्र की भाँति वह नैतिक होता है उनके व्यंग्य का आधार शुद्ध मानवीय है।''

सर्वेश्वर की काव्य– संवेदना और लोक–चेतना के सन्दर्भ में रमेश ऋषिकल्प का यह कथन भी सत्य है–''सर्वेश्वर समझौते के कवि न होकर विद्रोह के कवि है यह विद्रोह वर्तमान व्यवस्था में निहित मौकापरस्ती को देखकर पनपता है'' सर्वेश्वर जी की काव्य प्रतिभा और सम–सामयिकता के गहरे जुड़ाव की प्रशंसा करते हुए अज्ञेय जी ने भी कहा है– ''समकालीन सत्य और यथार्थ को जो नये कवि सफल और सशक्त हाथों से पकड़ सके है, उनमें सर्वेश्वर का विशेष स्थान है''।

इस प्रकार नयी कविता की विकास–यात्रा में जिन कवियों का योगदान रहा है उनमे सर्वेश्वर जी की पहचान सबसे अलग एवं स्पष्ट है। वे मध्यवर्गीय समाज की संवेदनाओं के कवि है, उन्होंने उस परिवेश और उसके यथार्थ को बहुत निकट से देखा भी है, और जिया भी है। इसीलिए वे इसे बड़ी सहजता एवं ईमानदारी से अपने काव्य–शिल्प में ढ़ालने में सफल रहे हैं। कवि के काव्य–सृजन के अनेक प्रयोजनों में एक प्रयोजन यह भी रहा है कि वे अपनी समकालीन चेतना, अनुभव, अनुभूति को जन–जन तक पहुंचा कर बदलाव का मार्ग भी प्रशस्त करना चाहते थे। इस संबंध में उनका मानना है–''जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बांधे हों, कि वे आपकी बात नहीं समझेंगे तो आपके पास दो ही रास्ते रह जाते है, या तो चुप रहें या फिर उसे ढंग से कहें, कि सुनने वाला तिलमिला उठे, उनकी कलई उतर जाएँ'' समाज की कलई उतारने के लिए सर्वेश्वर जी ने अपनी कविताओं में समाज के संघर्ष, नैतिक और चारित्रिक दारिद्रय, जर्जर रूढ़ियाँ, राजनैतिक अव्यवस्था, भ्रष्ट लोकतंत्र, व्यक्ति की आन्तरिक और बाह्य टकराहट, लोकव्यापी जन–असन्तोष, पदलोलुपता, अवसरवादिता, जन–सामान्य के दुःख, दर्द, गरीबी, घुटन, छटपटाहट आदि को अभिव्यक्ति दी है। सम–सामयिक घटित सत्य से गहरा रिश्ता जोड़ते हुए वृहत मानवीय सन्दर्भो से सदा जुड़ते रहने की विशेषता कवि में प्रारम्भ से ही थी। इसलिए तो वे काठ की नीरस और शुष्क घंटियों में चेतना के स्वर निनादित कर सके। उनकी कविता मानवीय संवेदना से निरन्तर जूझने की ताकत का परिणाम थी। उनकी कविता ''स्वान्त सुखाय'' न होकर सदैव देशा की जनता के बीच खड़ी रहती है।

अब मैं कवि नहीं रहा

एक काला झंडा हूँ।

तिरपन करोड़ भौंहों के

मातम के बीच खड़ी है मेरी कविता।

देश की गरीबी और भुखमरी का जो दर्दनाक चित्र सर्वेश्वर की कविताओं में चित्रित है, उनका जीवन्त रूप आज भी देश के विभिन्न प्रान्तों में साकार रूप में विद्यमान है। (राजस्थान, महाराष्ट्र विदर्भ, उड़ीसा, कालाहाँडी, उत्तरप्रदेश, के पूर्वी जिले आदि) कवि स्वयं जिस प्रदेश में जन्मा (उत्तरप्रदेश, बस्ती–जिला पिकौरा–ग्राम) वहाँ गरीबी का एक विशाल साम्राज्य वर्तमान में भी है। (जिसे कुआनों नदी संग्रह की कविताओं और अपने भाई श्रद्धेश्वर को समर्पित पंक्तियों में देखा जा सकता है, – जो आज भी इस नदी को झेल रहा है। जहाँ जिन्दगी रोटी के लिए पीढ़ियों से तरसती रही है। दिल्ली में रहते हुए भी हर क्षण उसके सामने से –

''पचास करोड़ आदमी खाली पेट बजाते''

ठठरियाँ खड़खड़ाते

हर क्षण मेरे सामने से गुजर जाते हैं।''

ग्रामीण जीवन का पिछड़ापन, गरीबी, भुखमरी का जो चित्रण कुआनो नदी कविता में हुआ है, वह सम्पूर्ण मानव–विकास और प्रगति के आंकड़ों को हिला देने वाला है।

बहुत गरीब जिला है वह – बस्ती

जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था।

मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे।

और निकाल लिए गये थे।

जिन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके।

उपर्युक्त पंक्तियाँ दिल्ली की सड़कों और कस्बे की जिन्दगी को साक्षात् करती हुई विपन्न जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है। कुआनो नदी को कवि अपने गांव से लेकर दिल्ली की सड़कों तक वैसी की वैसी की पसरी पाता है। हर गरीब की यही दुर्भाग्यपूर्ण आखिरी कहानी है कि उनकी चिता भी ठीक से नहीं जलती, आज भी उनके कानों से टकराती रहती है। फिर भी इस नदी ने आज तक न तो कगारे काटे है और न ही अपना पाट बदलती है। जैसे बहती थी वैसे ही बहती है और आज भी बह रही है।

राजनेता अपने आश्वासनों और नित–नयी योजनाओं से 'मौन रहो और प्रतीक्षा करो' कहते हैं, तो दूसरी ओर धीरे–धीरे आम जनता का विश्वास खोता जाता है, संकल्प सो जाते हैं, उनकी आत्मा खाली हो जाती है, और प्रतीक्षा करते–करते अन्त में आदमी मर जाता है। कवि की मान्यता है धीरे–धीरे कुछ नही होता है धीरे–धीरे यदि कुछ होता है तो वह केवल मौत होती है। राजनेताओं की धीरे–धीरे की इस रामनामी से देश की सभ्यता, संस्कृति और आदमी सभी मृतप्राय हो चुके हैं।

कुआनो नदी में कवि की मानवीय करूणा अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। कवि की सहानुभूति उन लोगों के साथ है जो कीचड़ में नाव फँस जाने के बाद, उसी बदबू में बैठकर नमक और तेल लगी रोटी चुपचाप खाने के लिए विवश हैं। खेतिहर मजदूर, सरकारी बाग का चौकीदार, छोटे–मोटे रोजगार से खुशहाल जिन्दगी जीने वाला स्वप्नदृष्टा, ऐसे लोगों के सूखे चीमड़ कंकालों के झुर्रियों वाले हाथ जब कवि के गलों को छू जाता है तब कवि सिहर उठता है।

सिहरन से भरा कवि अन्ततः हमसे, आपसे–सबसे प्रश्न करता है – क्यों यहाँ कोई जिन्दा नहीं है – अपने प्रश्न का कोई जवाब न मिलने पर असमर्थ, असहाय–सा कवि–मै एक मक्खी की तरह खुद अपने ऊपर भिनभिनाने लगता हूँ। दिल्ली की इन सड़कों पर/किन्तु मुर्दे उतने ही बेशुमार उसे दिखाई देते रहते हैं।

''कुआनो नदी खतरे का निशान'' कविता में बाढ़ की भयावह स्थिति, अपनी गृहस्थी के समान को बचा लेने की जद्दोजहद, सरकारी रक्षा–तंत्र के निरूपाय उपायों के बीच मानवमात्र की जिजीविषा के साथ कवि ने आम जनता को बाढ़ के खतरे के निशान से बचने के लिए मार्गदर्शन और ऊर्जा भी दी है।

कड़कती बिजली है/दिलों में बस/हर अन्धेरा खुद
रोशनी को जन्म देता है/अन्धेरे में निकल पड़ो
तो अन्धेरा अन्धेरा नहीं रह जाता।

आजादी के बाद एक तरफ सरकार के 'गरीबी हटाओ योजना' के उत्साहवर्धक मायावी नारे और आंकड़े हैं, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय धुन और क्रान्ति के नाम पर कुचले गए गरीब आदमी। भुजैनियां का पोखरा कविता में गरीबी का चित्रण पाठक के मर्म को हिलाने के लिए पर्याप्त है। यह कविता निराला की भिक्षुक कविता से संवेदना के स्तर पर साम्य रखती है।

भांड के सामने काली भूतनी–सी/आज भी वह बैठी है।
पसीने से चिपचिपाती देह लिए/चुप खामोश
साग के पोपले डंठलों में/सांप के बच्चे होने का भय
खाने के साथ एक उदास संगीत–सा उनके दिलों में बजता रहता है।

राजनैतिक विद्रूपता, सत्ता द्वारा दमित आम जनता, उसकी विवशता, बुद्धिजीवियों की अकर्मण्यता, नैतिक दारिद्रय को कवि ने लोकतंत्र का गाना– 1, 2 एवं तीन एवं प्रौढ़ शिक्षा 1 एवं 2 में व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। इन सबके बावजूद कवि अनुभव करता है।

अंधेरे को सूंघकर मैनें देखा है/उसमें सूरज की गंध आती है।

आजादी के बाद देखते–देखते देश में गौबरैलों का साम्राज्य स्थापित हो गया, उन्होंने पूरी दुनिया को ही अपनी गन्दगी से पाट दिया। जितनी विष्ठा उतनी निष्ठा के मूलमंत्र से अच्छी से अच्छी योजना और विचार गौबरैले में ही बदलते चले जा रहे हैं और हम सब गलीच इश्तहारों से लदी दीवार की तरह निर्लज्ज खड़े है। आम जनता के दुख हरे है किन्तु इन गौबरैलों पूरी की पूरी दुनिया काली दिखाई पड़ रही है।

सांस्कृतिक और नैतिक अवमूल्यन इतने निम्न स्तर पर पहुंच गए है कि एक बस्ती जल रही है और सारी दुनिया कुँए की जगत पर पांव पसारे बैठी हैं गूंगे इतिहास का यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अपनी आग अपने को ही बुझानी पड़ती है। सभ्यता इस स्तर पर पहुंच गयी है कि 'एक घर की आग दूसरे घर का चिराग' बन जाती है और विवश मानवता 'मृतकों की संख्या को अंगूर के गुच्छों की तरह 'गिनती रह जाती है। असहनशीलता और आक्रोश की सीमा यह है कि आदमी को न बंदूक होते देर लगती है, और न लाश। नैतिक और चारित्रिक अवमूल्यन के अन्तर को कवि ने कल और आज शीर्षक कविता में बड़ी गहनता से रेखांकित किया है।

पहले दाल में काला था
अब काले में दाल है
फिर भी दुनिया जीम रही है
हमको यही मलाल है।

स्वतंत्र रहने की भावना मानव की एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है जिसे समाज के ठेकेदार सांप के फन की तरह कुचलना अपना कर्त्तव्य समझते है, किन्तु कवि का मानना है, कि यह आजादी की भावना सांप का फन नहीं है जिसे कुचला जा सके।

वह एक सुगन्धि है। जो सड़ते नाबदान में।

सारी दुनिया के सूअरों के घुघआते बैठ जाने पर भी

नष्ट नहीं होगी। तुम जितनी आग बरसाओगे/उतनी ही दूर–दूर तक फैलोगी।

धुंऐ के साथ ऊपर और ऊपर उठती जायेगी।

कवि ने अपनी आँखों से जलती बस्तियों, वहशी सिपाहियों के चंगुल में गांव की बहु–बेटियों, को नदी में बहकर आयी लाशों को, फौजियों के आंतक से आक्रान्त बेकसूर शरणार्थियों के भयग्रस्त चेहरों को देखा है। अतः वह कहता है –

एक बात बताऊँ/बहुत ज्यादा मरे हुए चेहरे देखने बाद।

जिन्दा चेहरे भी मरे हुए लगने लगते है/और दहशत पथरायी

पुतलियों से अधिक देखती पुतलियों से होने लगती है।

भूमण्डलीयकरण, वैश्वीकरण के समसामायिक युग के यथार्थ का एक पहलू यह भी कि अब हमसे हमारी अभिव्यक्ति छीनने का षड़यंत्र भी रचा जा रहा है। इस षडयंत्र ने व्यक्ति को अपने अस्तित्व के साथ–साथ उसकी सभ्यता और संस्कृति से भी काट कर रख दिया है। छीनने आये है वे दूसरी और उसी अभिव्यक्ति का सहारा लेकर ''राजनेता से लेकर अफसर तक, समाज सेवक से लेकर हिन्दी सेवक'' तक अपनी सेवाकाई के चलते विश्व–व्यापी सैर करने में सफल रहे है।

गांधीवादी दर्शन की प्रतीक – बकरी घर के पिछवाड़े मिमियाने को मजबूर है लोकतंत्र को जूते की तरह लाठी में लटकाने वाले तथाकथित लोकतंत्र के रखवालों की नजर से गांधी की लंगोटी–लाठी, घड़ी, चश्मा और चप्पल तक नहीं बच पाये है।

मैं जानता हूँ।

क्या हुआ तुम्हरी लंगोटी का

उत्सवों में अधिकारियों के

बिल्ले बनाने के काम आ गयी,

इन स्थितियों को देखने के बाद भी कवि को विश्वास है कि यदि 'चंद कोयले ही अगर जल उठे। तो बाकी गीले कोयले भी आग पकड़ लेगे। इसलिए कवि सभी को आगाह करता हुआ कहता है–

फैसले पर न पहुँचा हुआ आदमी

फैसले पर पहुँचे हुए आदमी से

ज्यादा खतरनाक होता है।

अन्ततः कवि देखता है 'अंगीठियों से तमतमाये चेहरो पर फैसला लेने की सामर्थ्य दिखायी देने लगी है। 'यह दिखाई देना ही कवि की कसौटी, और रचना की समकालीनता का चरम बिन्दु है। समसामयिक लोक चेतना से गहन संपक्ति के बाद भी कवि के मन में अपूर्णता के कारण एक असन्तोष भी दिखाई देता है–

जो कुछ लिखा मैनें जैसे बारह खड़ी है,

जुड़ नहीं पायी अभी एक भी कड़ी है,

जंगल के किनारे आकर खड़ा हो गया हूँ

मौत मुझे लेने घर से चल पड़ी है।

यह अंसतोष समकालीन धर्म राजनीति समाज और संस्कृति में आ रहे विघटन को देखकर गहराता ही जाता है।

''मंत्र जपा करते थे पहले

अन्त समय में शान्ति के,

अब तो जन्म के पहले

नारे देने होगें क्रान्ति के।

कवि की दृष्टि में मानवता और मानव इस संसार की सबसे कीमती वस्तु है। वह इसके समक्ष ज्ञान, विज्ञान, संविधान और ईश्वर को भी तुच्छ मानता है। यदि लाशों को देख कर भी मानव मन नहीं पसीजता तो यह मान लेना चाहिए अब तुम्हारे लिए नहीं रहा संसार कवि इन हत्यारों को कभी भी माफी दिये जाने के पक्ष में नहीं है। वह भले ही कितने ही शक्तिशाली पद या वर्ग से संबन्धित क्यों न हो–

''कभी मत करो माफ/चाहे हो वह तुम्हारा यार

धर्म का ठेकेदार/चाहे लोकतंत्र का स्वनाम धन्य पहरेदार।

कवि मानवता के इन हत्यारों (रोशनियों) के दाँत तोड़ने के लिए अन्धेरों को हँसने की प्रेरणा देता है। शोषित, पीड़ित जनता को तपकर, पिटकर कुल्हाड़ी का रूप लेने की सीख देता है।

क्योंकि सर्वेश्वर प्रजातंत्र के सामान्य व्यक्ति की सामान्य चिन्ताओं के कवि है। क्योंकि ''समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से जो घटित हो रहा है, मात्र उतना नहीं है, बल्कि जो कुछ क्षतिग्रस्त है उसकी पुनर्रचना की सृजनशील चेष्टाएं और जीवन समुन्नत तथा सुन्दर एवं मनोहानी बनाने की परिकल्पना भी उसी समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है''।

स्पष्ट है कि ''सर्वेश्वर की कविता युगीन सन्दर्भो और राष्ट्रघाती हलचलों का पूरा मुआयना करती हुई हमें समवेत का समीकरण सिखलाती है। कवि जानता है ''कि लकड़बग्घे घात में है और लोकतंत्र अभी पालने में है। अतः उनके चालाक तरीकों से बचना होगा'', क्योंकि राष्ट्रीय अखण्डता और मनुष्यता को खंडित होते नहीं देखा जा सकता''।

सर्वेश्वर जी की समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में कृष्णदत्त पालीवाल की ये पंक्तियाँ भी बहुत सारनर्भित है। ''आज के आदमी से जुड़े प्रश्नों को वे तकिया देकर सुलाते नहीं है–खड़ा करते है, जगाते है, तथा सोचने को ढंग से विवश करते है। इन चिन्ताग्रस्त संवदेनों को वे तात्कालिक मोह–मंत्रों से कीलित नहीं करते, स्वचेतना परक बौद्धिकता से जमी हुई राख को फूँककर दहकाते हैं। जीवन को गहराई से सोचने समझने वाला कवि कितनी सही समझ हमारे भीतर निष्पन्न कर सकता है, सर्वेश्वर की कविता इसका प्रमाण रही है''।

इस प्रकार समकालीनता का एक सिरा जहाँ तात्कालिक समस्याओं से सम्बद्ध होता है तो वहीं दूसरा सिरा समाज की शाश्वत, अपरिहार्य और युगीन विडम्बनाओं से जुड़ा होता है। जो कालानुरूप नये–नये रूपों में नये–नये शब्दों में ढलकर कविता में प्रस्फुटित होता है। कविता का यही गुण कवि को समकालीन और प्रासंगिक बनाकर कालजयी बनाता है क्योंकि–लीक पर न चलने वाले का अंत पूर्ण विराम में कहाँ होता है।

ऐसे कवि के समकालीनता के पक्ष को पूर्ण विराम देना वस्तुतः एक कठिन कार्य है।

***व्याख्याता**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़
अजमेर (राज.)

संदर्भ सूची

1. नेमीचन्द जैन – बदलते परिदृश्य – पृष्ठ 63
2. अज्ञेय– आलवाल – पृ. 16–17
3. डॉ. कान्तिकुमार– नयी कविता – पृष्ठ – 109
4. अज्ञेय–तीसरा सप्तक–कवि का वक्तव्य–पृ. 212
5. रमेश ऋषिकल्प–नई कविता और सर्वेश्वर–पृष्ठ–16
6. अज्ञेय का मत– अनन्तकीर्ति चौधरी– समकालीन प्रतिनिधि कवि'' से उद्धृत – पृ.–152
7. सर्वेश्वरदयाल सक्सैना–गर्म हवाएँ – पृष्ठ – 8
8. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – गर्म हवाऐं – पृ. 15
9. कुआनो नदी पृ. 13
10. कुआनो नदी पृ.–17
11. गर्म हवाऐं पृ. 87–90
12. (कुआनो नदी–पृ. 23
13. कुआनो नदी–पृ. 22–23–24
14. कुआनो नदी–पृष्ठ सं.–29
15. कुआनो नदी–पृ. – 33
16. कुआनो नदी – पृ. 46–47
17. कोई मेरे साथ चले पृष्ठ 88–89–90
18. खूंटियों पर टंगे लोग पृष्ठ – 59–61
19. कुआनो नदी–पृष्ठ–49
20. गर्म हवाऐं पृष्ठ–53
21. कोई मेरे साथ चले पृष्ठ–86–87

22. कुआनो नदी–पृष्ठ–66–67
23. कुआनो–नदी पृष्ठ–72–73
24. गर्म हवाऐं पृष्ठ–106
25. कोई मेरे साथ चले–हिन्दी सेवी सपूत –पृष्ठ 93
26. गर्म हवाएँ–पृष्ठ 109–110
27. कुआनों नदी पृष्ठ – 36
28. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी समकालीन हिन्दी कविता – पृष्ठ–35
29. डॉ. संतोषकुमार तिवारी– आधुनिक हिन्दी काव्य एवं अन्य निबन्ध पृष्ठ–75
30. कृष्ण दत्त पालीवाल–सर्वेश्वर और उनकी कविता पृष्ठ–39